दो बागड़बिल्लों की खोजकथा

चित्र और आलेखः
दिलीप चिंचालकर

मेरी बागड़

बचपन में हम जुगनूबत्ती का एक खेल खेलते थे। हमारे बगीचे की बागड़ में सैकड़ों जुगनुओं का बसेरा था। शाम होते ही लपझप करती रोशनी के साथ वे बाहर निकल आते। चौड़े मुँह वाली बरनी में शहतूत के कुछ पत्ते डाल हम उनका इन्तज़ार करते। और जलती-बुझती ट्यूबलाइट वाले जुगनुओं को पकड़कर बरनी में डालते जाते। जब सौ-पचास जुगनू इकट्ठा हो जाते तो बरनी खासी रोशन हो जाती। आधे जुगनू जब झप कर रहे होते तब दूसरे आधे लप करते। यानी हमारी जुगनूबत्ती कभी न बुझती थी। कुछ देर बाद हम उन्हें फिर से बागड़ में छोड़ आते।

दिन के समय इसी बागड़ में से फटर-फटर, चीं..चीं.. की महीन आवाज़ें आतीं। ये बाबलर (सात बहनें) और टेलरबर्ड (दर्जिन) थीं जो दिन भर बागड़ में फुदकती रहती थीं। इतवार को पिताजी जब बागड़ की सूखी टहनियाँ निकाल रहे होते तो उन्हें इनके घोंसले दिख जाते। कभी-कभी उनमें ईंट जैसे लाल-सुर्ख अण्डे भी होते।

बागड़ के इर्द-गिर्द गिरे सूखे पत्तों में सात बहनों की टोली बारहों महीने अपनी पसन्द के कीड़े ढूँढती रहती। कभी-कभी एक लम्बे से नाग महाराज भी इन पत्तों में छुपकर सो जाते। उन्हें देखते ही सात बहनें चिल्ला-चिल्लाकर सारा घर सिर पर उठा लेतीं। माँ कहती कि महाराज चूहे खाने आए हैं। वही छछूँदर और चूहे जिन्हें हम अपने घरों से भगा देते हैं, वे कहाँ जाएँगे? जब तक घर में वापिस घुसने का मौका नहीं मिलता वे बागड़ में ही कहीं दुबके रहते हैं।

बारिश के आते ही पता नहीं कहाँ से रेल्वे क्रीपर, सैंडविच आइलैण्ड क्लाइम्बर और किकोड़े की बेलें उग आतीं। पूरी बागड़ नीले-लाल-पीले फूलों से खिल उठती। उन पर तितलियाँ, भौंरे मण्डराते। वहीं-कहीं गुड़हल का एक दुबला-सा पेड़ भी रहता था। बारिश में उसमें खूब पत्ते फूटते और फूल भी खिलते।

बड़ा होने पर देखता हूँ कि अब न तो घर के बाहर बगीचे हैं, न बागड़। जुगनू तो ऐसे गायब हुए जैसे कभी थे ही नहीं। रंग-बिरंगे फूल, छोटे पक्षी, सात बहनें अब भी दिखती हैं – पर कुछ कम। नाग महाराज भी कहीं चले गए हैं शायद। घर से निकाले गए चूहे-छछूँदर अब पता नहीं कहाँ आसरा ढूँढते होंगे? सीमेंट की चौड़ी सड़कें और बहुमंज़िला घर क्या बने, बागड़ शहर से विदा ही हो गई। और उसके साथ-साथ प्राणियों की छोटी-मोटी दुनिया भी।

उनकी बागड़

कॉलेज के दिनों में मैंने *नेशनल ज्योग्राफिक* पत्रिका में एक लेख पढ़ा – इंग्लैंड की बागड़ों पर। हज़ारों साल पहले इंग्लैंड में हज़ारों मील लम्बी बागड़ें हुआ करती थीं। वे इतनी चौड़ी थीं कि एक मील लम्बी बागड़ के लिए एक एकड़ ज़मीन लग जाती थी। घनी इतनी कि मज़ाल है कोई चूहा इधर से उधर निकल जाए। एक खेत को दूसरे खेत से अलग करने, गाय-बकरियों को खेतों में घुसने से रोकने के लिए बागड़ लगाई जाती थी। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद इंग्लैंड ने और ज़्यादा अनाज उगाने के लिए कमर कस ली। फसलों के लिए ज़मीन कम पड़ रही थी इसलिए बागड़ हटानी शुरू कर दी। 40 साल में किसानों ने 96,000 मील बागड़ उखाड़ दी। यह बागड़ इतनी लम्बी थी कि इससे पृथ्वी को चार बार लपेटा जा सकता था।

फूलों की क्यारियों के पीछे 23 फीट ऊँची, सौ साल पुरानी बागड़ थी

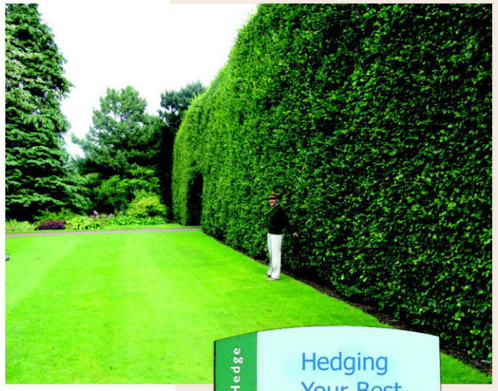

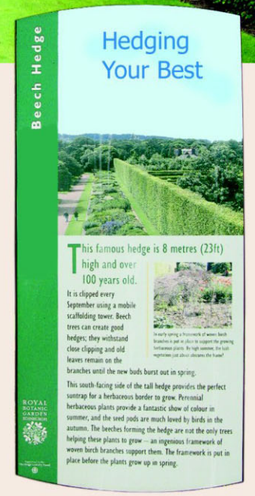

कुछ समय बाद लोगों को लगा कि यह गलत है। बागड़ हमारी संस्कृति का हिस्सा है। इंग्लैंड की कुछ बागड़ बहुत ही पुरानी हैं। जैसे, जूडिथ की बागड़, महान यौद्धा विलियम की भतीजी ने इसे ग्यारहवीं शताब्दी में लगाया था। इस बागड़ ने 40 राजाओं को राज करते देखा है। महाकवि चॉसर, मिल्टन और शेक्सपियर के ज़माने देखे हैं। यह बागड़ आज भी जीवित है। सरकार ने भी बागड़ की साज-सम्भाल करने वालों को सरकारी सहायता देनी शुरू की। किसानों में तेज़ी से बागड़ रोपने की प्रतियोगिता होने लगी। जीतने वाले को मिलती चमचमाती ब्रिटिश नेशनल ट्रॉफी। मैंने मन ही मन तय कर लिया कि कभी इंग्लैंड गया तो कोहिनूर हीरा भले न देखूँ, बागड़ ज़रूर देखूँगा।

इस साल गर्मियों में इंग्लैंड जाने का मौका मिला। मैंने अपने मित्र से कहा, "दोस्त, मुझे तो बागड़ देखना है।" वो मुझे जानता था, इसलिए चौंका नहीं। शाम को हम उसके गाँव के बगीचे में गए। वहाँ फूलों की क्यारियों के पीछे 23 फीट ऊँची, सौ साल पुरानी बागड़ थी। एक दूसरे मित्र के घर के रास्ते के दोनों तरफ दस-दस फीट ऊँची बागड़ की हरी दीवारें थीं। उसका घर 600 साल पुराना था। क्या बागड़ की उम्र का अन्दाज़ तुम खुद लगा सकते हो? बागड़ की उम्र पता करने के लिए मैक्स हूपर ने एक फार्मूला बनाया है – बागड़ के एक सौ मीटर के टुकड़े में जितनी किस्म के पेड़ मिलेंगे उन्हें सौ से गुणा कर दो। यही होगी बागड़ की ठीक-ठीक उम्र। मेरा दीवानापन देख कर मेरे दोस्त ने एक किताब मेरे सामने रख दी – *द ग्रेट हेज ऑफ इंडिया* यानी भारत की महान बागड़।

इस टुकड़े में बागड़ के वे सारे अवशेष मिल गए जिन्हें रॉय सालों से ढूँढ रहे थे। सामने हैं सन्तोष कुमार निषाद।

चित्रः रॉय मॉक्सहैम

हमारी महाबागड़

कितनी मज़े की बात थी। भारत से इतनी दूर मैं इंग्लैंड में बागड़ देखने आया। और उधर दस साल पहले एक अँग्रेज़ – रॉय मॉक्सहैम – मेरे शहर (इंदौर) के ऐन बगल में यानी होशंगाबाद-खंडवा-बुरहानपुर में एक बागड़ देखने आया था। उसने उसे ढूँढा भी और उस पर एक पुस्तक भी लिख डाली। सच कहो तो हमारे देश की यह महाबागड़ थी ही कुछ ऐसी! यह हमारे देश के इतिहास का वह हिस्सा है जिसे हमने तो क्या अधिकतर भारतीयों ने स्कूल में कभी नहीं पढ़ा होगा।

इस बागड़ को अँग्रेज़ों ने लगाया था। गाय-ढोरों के लिए नहीं बल्कि इसलिए कि चोरी-छुपे नमक न ले जाया जा सके। भारतीयों पर अत्याचार करने वाली अँग्रेज़ों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी की यह एक और दुष्ट चाल थी। उसने नमक पर बहुत ज़्यादा टैक्स लगा दिया था। इसलिए एक मामूली मज़दूर को साल भर के नमक के लिए अपनी दो महीने की मज़दूरी जितनी कीमत चुकानी पड़ती थी। नमक तो समुद्र किनारे आसानी से बन जाता था। इसलिए उसकी तस्करी होने लगी। बागड़, इन तस्करों को समुद्र तट से भारत में घुसने से रोकने का सबसे सस्ता तरीका था। पकड़े जाने पर दस साल की कैद होती थी।

महाबागड़ पाकिस्तान में सिन्धु नदी के किनारे तोरबेला से शुरू होती थी। फिर यह पंजाब, हिसार (हरियाणा), दिल्ली, मथुरा-आगरा-झाँसी-खैलर-बबीना से होते हुए सागर पहुँचती। और फिर नर्मदा नदी पार करने के बाद यह होशंगाबाद-खंडवा-बुरहानपुर से महाराष्ट्र के चन्द्रपुर पहुँच जाती। वहाँ से पूर्व की तरफ घूमकर आखिर में यह उड़ीसा पहुँचती जहाँ महानदी के तट पर यह खत्म हो जाती। इस महाबागड़ की लम्बाई 2,300 मील थी। इसकी चौकसी के लिए 12,000 कर्मचारियों का अमला था।

स्वाद के लिए खाने में चुटकी भर नमक ही काफी होता है। नमक ज़्यादा हो या कम, दोनों ही स्थितियों में स्वाद और स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। नमक ज़रूरी है इसीलिए तो गांधीजी ने नमक सत्याग्रह किया था। भई, जब नमक इतनी आसानी से बनाया जा सकता है तो फिर उसे महँगा क्यों करते हो? सन् 1879 में अँग्रेज़ों ने नमक की कीमत देशभर में एक समान कर दी। इस कारण तस्करी बन्द हो गई और बागड़ का कोई उपयोग नहीं रहा। धीरे-धीरे वह खत्म हो गई।

महाबागड़ की खोज

रॉय मॉक्सहैम कई सालों से भारत आते-जाते रहे थे। भारत पर तरह-तरह की किताबें पढ़ना उनका शौक था। जनरल विलियम स्लीमन की एक पुरानी किताब मॉक्सहैम के हाथ लगी। स्लीमन ही वह अँग्रेज़ था जिसने भारत में ठगों और पिड़ारियों पर नकेल कसी और इन शब्दों को अँग्रेज़ी में पहचान दी। उस किताब के किसी एक फुटनोट में इस बागड़ का ज़िक्र था। अपनी सनक में रॉय ने तय कर लिया कि वह भारत जाकर इस बागड़ का पता लगाएगा। लेकिन बागड़ को खत्म हुए सौ साल से ऊपर हो गए थे। लोगों ने भी उसे भुला दिया था। बड़े-बूढ़े, मास्टर-अफसर किसी को भी बागड़ के बारे में कुछ याद नहीं था।

रॉय ने हार नहीं मानी। वे तीन सालों तक भारत आते रहे। यहाँ दो-दो महीने रहकर वे बागड़ की तलाश करते। हर बार नए-नए नक्शे लाते। ग्लोबल पोज़ीशनिंग यंत्र की भी मदद लेते। खचाखच भरे टैम्पो-ट्रैक्टर-रेलगाड़ी और बस में धक्के खाते। एक स्कूली लड़के सन्तोष कुमार निषाद को दुभाषिए की तरह साथ लेकर गाँव-कस्बे, खेत-बीहड़ घूमते रहे। वे न भूख-प्यास से डरे, न चम्बल के डाकुओं से।

झाँसी के पास के एक कस्बे का किस्सा है। रॉय की तीसरी भारत यात्रा खत्म होने को थी। ऐरक के ज़मींदार हरिदास वर्मा के यहाँ रात गुज़ाकर रॉय लौटने ही वाले थे कि उनकी मुलाकात राधेश्याम पुजारी से हो गई। उनकी बातें सुन, बाबा ने छूटते ही पूछा कि क्या परमट लैन खोज रहे हो? मैं बताता हूँ। सत्तर साल से ज़्यादा के पुजारी बाबा बड़ी मज़बूत काठी के थे। तेज़ कदम बढ़ाते-दौड़ते वे रॉय को एक ऊँचे टिब्बे पर ले गए जो करीब 300 गज तक जाता था। बाबा ने कहा कि यही है तुम्हारी परमट लैन। यह इससे ज़्यादा नहीं मिलेगी क्योंकि आगे पीडब्लूडी (लोक निर्माण विभाग) वालों ने अपनी सारी सड़कें बागड़ के ऊपर बना दी हैं। अँग्रेज़ों ने ज़मीन से थोड़ी ऊपर एक चौड़ी पाल बनाकर उस पर बागड़ रोपी थी। देहाती इलाके में सड़कें बनाने के लिए यह एकदम दुरुस्त ज़मीन थी। इसी टुकड़े में रॉय को बागड़ के वे सारे अवशेष मिल गए जिन्हें वे सालों से ढूँढ रहे थे।

रॉय को हैरानी थी कि जिस बात का किसी को पता नहीं था उसे एक पुजारी कैसे जानता था! बाबा ने बताया कि पुजारी तो वो अब है, पहले वह डकैत था। इन्हीं जंगलों में पुलिस के साथ लुकाछिपी खेलता था। फिर वह सब छोड़ दिया। दस साल की सज़ा काटी और अब हनुमान जी की सेवा कर रहा हूँ। समझ लो, हनुमान जी ने ही अपने दूत को भेजा है, रॉयसाहब की लंका खोजने के लिए।

पुजारी बाबा ने छूटते ही पूछा कि क्या परमट लैन खोज रहे हो? मैं बताता हूँ।

रॉय मॉक्सहैम द्वारा की गई महाबागड़ की खोज की कहानी लन्दन की किताबों की एक दुकान – क्विंटो – से शुरू हुई थी। यहीं पर उन्हें जनरल विलियम स्लीमन की किताब हाथ लगी थी। और सालों बाद लन्दन में घूमते हुए अचानक वही क्विंटो मेरे सामने आ गई। रॉय मॉक्सहैम की *द ग्रेट हेज ऑफ इंडिया* से मुझे पता चला कि वे लंदन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय संरक्षण विभाग में थे। मुझे लगा क्यों न रॉय साहब की खोज की जाए। विश्वविद्यालय से सम्पर्क किया। पता चला कि वे सेवानिवृत्त हो चुके थे और पुराने सहकर्मी उनका पता किसी अजनबी को नहीं देना चाहते थे। मैं निराश ज़रूर हुआ पर फिर भी कागज़ के पुर्जे पर एक संदेश लिखकर उन्हें दे दिया – भोपाल की बच्चों की एक पत्रिका का एक खोजी लेखक बागड़ के सहारे-सहारे तुम्हारे आँगन में आ पहुँचा है। उसकी मेज़ पर रखे टेलीफोन का नम्बर फलाँ-फलाँ है। अभी शाम हुई ही थी कि मेरा फोन बज उठा। आवाज़ आई, "नमस्ते, मैं रॉय मॉक्सहैम बोल रहा हूँ। कल दोपहर चाय पीने के लिए आ सकते हो?"

एक सुर्ख गुलाबी इमारत में "एपल ट्री" नाम की दुकान के ऊपर वाली टहनी पर रॉय साहब रहते थे। छोटे से फ्लैट की दीवारों पर लक्ष्मी, शिव-पार्वती और गणेशजी तस्वीरों में विराजे थे। अलमारी में भारत पर दसियों पुस्तकें रखी थीं। एक फ्रेम में काँच के पीछे इमली की सूखी पत्तियाँ भी दबी रखी थीं – इनके पेड़ ने कभी उस महाबागड़ को देखा था। लौटते समय रॉय भारत से बरगद के बीज भी ले आए थे। लंदन की ठण्ड में भी वे नन्हे पेड़ बनकर फ्लैट की खिड़की में लहलहा रहे थे। बरगद-पीपल के बीज जब तक पक्षियों के पेट से होकर नहीं निकलते, अंकुरित नहीं होते। रॉय ने उन्हें रेफ्रिजरेटर के पीछे रखकर गर्मी पहुँचाई होगी। या क्या पता कुछ असर फ्लैट के उस माहौल और रॉय मॉक्सहैम के स्वभाव की ऊष्मा का भी रहा हो।

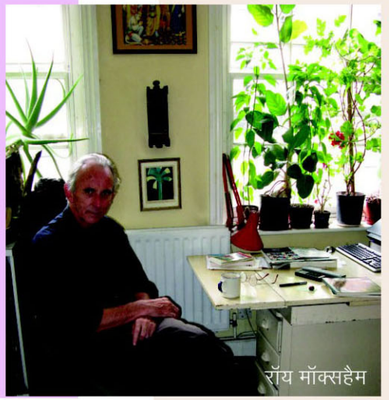
रॉय मॉक्सहैम